BHARATI INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH & DEVELOPMENT (BIJMRD)

(Open Access Peer-Reviewed International Journal)

DOI Link :: https://doi.org/10.70798/Bijmrd/020500015

Available Online: www.bijmrd.com|BIJMRD Volume: 2| Issue: 5| June 2024| e-ISSN: 2584-1890

नामवर सिंग के कार्यों में हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण

Shweta Kumari

Research Scholar, Department of Hindi

RKDF University, Ranchi

Abstract:

नामवर सिंह ने अपना आलोचकीय जीवन 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' से आरंभ किया था। इसमें अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच-बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण एवं सुचिंतित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। नामवर सिंह ने हिन्दी आलोचना में जब से (57-58 वर्ष पहले) कदम रखा है तभी से वे इसके केन्द्रीय किरदार रहे हैं। इस दौरान साहित्यकारों की पीढी बदल गई। हिन्दी- साहित्य में कई आन्दोलन आए और गए। आलोचक व रचनाकार आए और गए. लेकिन इस मायने में नामवर सिंह एक अपवाद ही हैं कि इतने लम्बे समय बाद भी न तो आए-गयों की सूची में शामिल हुए और न ही पुराने पड़े। एक तो हिन्दी- आलोचना की यह विडम्बना ही रही है कि आमतौर पर इसके महत्त्वपूर्ण आलोचक भी विशेष समय के बाद के साहित्य के भावबोध को सही-सही नहीं पहचान पाए और नये लेखन को पुराने विचारों व साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर पीटते रहे और खारिज करते रहे। दूसरी गौर करने की बात है कि हिन्दी के समर्थ आलोचक मूलतः कवि थे, कविता के क्षेत्र से वे आलोचना-कर्म में प्रवृत्त हुए इसलिए उनकी आलोचना-दृष्टि व आलोचना-कर्म पर कविता ही छाई रही। आलोचना में कविता से इतर गद्य की विधाओं की उस तरह विवेचना नहीं हुई जिसकी वे अधिकारी थी। किसी प्रसंगवश, मजबूरीवश, जरूरतवश या लिहाजवश यदि किसी गद्य विधा का जिक्र हुआ भी तो केवल उपन्यास का ही। जब कहानी जैसी महत्त्वपूर्ण विधा भी उपेक्षित रही तो आत्मकथा, जीवनी आदि का तो जिक्र ही क्या करना। यद्यपि नामवर सिंह भी कविता से शुरू करके आलोचना-कर्म में दाखिल हुए, लेकिन वे सिर्फ कविता की आलोचना तक ही नहीं रूके और कहानी आलोचना को भी नया फलक प्रदान किया।

नामवर सिंह ने कविता से आलोचना में प्रवेश विशेष मकसद व कर्तव्यबोध से किया। इस संबंध में उन्होंने कहा है कि "मैं सोचता था कि कविता के द्वारा सरस्वती की आराधना करूंगा लेकिन देखा कि भक्तों के कारण साहित्य का मन्दिर उनके पैरों की धूल से भर गया है और उसकी सफाई ज्यादा जरूरी है, पूजा से पहले और झाड़ उठा लिया,

सफाई करने लगा, पैंतीस वर्षों से में केवल सफाई कर रहा हूं। आगे चलकर मुक्तिबोध के शब्दों में अपने इस कर्म को गौरव भी देने की कोशिश की है जो है, उससे बेहतर चाहिए सारी दुनिया को साफ करने के लिए मेहतर चाहिए। मेहतर होना कोई बुरी बात नहीं है, इसीलिए कविता छोड़कर आलोचना का कर्म, जो बहुत कुछ सफाई जैसा ही है करने की कोशिश करता रहा।

परिचय

'सफाई' का यह काम सीधा-सरल नहीं था, इसके कई मोड़- पड़ाव व संघर्ष हैं। विवाद हैं और आरोप-प्रत्यारोप हैं। अपने विचार को, मान्यता को स्थापित करने व मनवाने के लिए पूरी जद्दोजहद करनी पड़ी है। अपने विचारधारात्मक दोस्तों व दुश्मनों से लगातार लोहा लेना पड़ा है, परन्तु यह भी सच है ि संघर्ष की इसी आग में तपकर ही यह कुन्दन बना है।

के विकास में अपभ्रंश का योगदान' (1952), आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां' (1954), पृथ्वीराज रासो की भाषा' (1956), 'इतिहास और आलोचना' (1957), 'कहानी: नयी कहानी' (1964), कविता के नये प्रतिमान (1968), दूसरी परम्परा की खोज' (1982), वाद विवाद संवाद (1990)पुस्तकों के रूप में तथा अनेक वार्ताओं एवं भाषणों में हमारे सामने मौजूद है।

इसके बावजूद इनका मानना है कि लोगों की उनसे जितनी अपेक्षाएं थी उसकी तुलना में उन्होंने कम लिखा, इसीलिए उन्हें 'अपने आलोचना कर्म से घनघोर असंतोष है। नामवर सिंह ने आलोचना को वैचारिक संघर्ष का प्रभावी साधन बनाया, अपने आलोचना-कर्म से असंतोष की यह भावना उनके दायित्व बोध से ही निसृत है। नामवर सिंह के आलोचक के बारे में यह बा किसी हिचक के कहा जा सकता है कि उन्होंने जो काम अपने जिम्मे लिया था उसको बड़ी शिद्दत से किया। बहुत से कवियों- रचनाकारों और रचनाओं पर कलम चलाने की उनकी महत्त्वाकांक्षी योजनाएं अभी पूरी तो क्या बेशक शुरू भी नहीं हुई हैं, लेकिन वे अपने अब तक के कर्म से भी संतुष्ट हो सकते हैं और उनकी अधूरी योजनाएं भी भावी 'साहित्य- मेहतरों को शेष काम की ओर संकेत करने का महत्त्वपूर्ण काम करती हैं। नामवर सिंह के बारे में अपनी बात यदि कवि व कथाकार राजकुमार राकेश के शब्दों में कहूं तो वह कुछ इस तरह होगी "समग्र भारतीय वाङ्.मय में कबीर के बाद नामवर सिंह एक ऐसे व्यक्तित्व नजर आते हैं जो हर आने वाले काल में ही नहीं, एक असंभावित अपवाद की तरह अपनी हर रचना से बड़ा है। गालिब की दिल्ली में आज भी बनाकर फकीरों का भेष तमाशाए अहले करम' देखने वाले इस गंवई व्यक्तित्व के बारे में कोई यह नहीं जानना चाहता कि आज तक वे क्या लिख चुके हैं, आजकल क्या लिख रहे हैं और आगे क्या कुछ लिखने वाले हैं। उनका हर कहा- अनकहा शब्द उनके आलोचनात्मक तेवर और साहित्य की प्रतिनिधि रचना के रूप में स्वीकार्य हो जाता है। 'वाचक साहित्य की जो प्रवृत्ति कबीर में थी, वह आज इस व्यक्तित्व में चीन्हीं जा सकती है, जो अपने विचार के प्रति दृढ़ है. किंतु वह स्वयं विचार के पीछे नहीं, विचार उसके पीछे छाया की तरह चलता है। ठीक-ठीक यह अंदाजा नहीं लगाया जा सकता. कि दो भिन्न समयों में, एक ही भाव को व्यक्त करते हुए वे अपने पिछले विचार के तत्त्वार्थ की जमीन पर ही अटके हैं या उसी विचार के नये रूपान्तरण की नयी जमीन को अपना

चुकने के उपरांत उसे घुटने टिकवाकर अपने सामने नचवा रहे हैं। बनाकर प्रस्तुत करती है। यह सहजता अपनी परतों की गहराई में इतनी विकट और विकराल है, जिसे कोई विरला ही अपने आजीवन श्रम, विश्वास और जीवन के बूते पर अर्जित कर पाता है। जबकि हिन्दी में तो यह तथ्य एक कायदे की तरह है कि उसे प्रशस्तियां मर जाने के बाद ही मिलेंगी। किंतु नामवर सिंह के व्यक्तित्व, रचनाधर्मिता और आलोचना के 'लोक' का मूल्यांकन - उनके जीवनकाल में ही चौंकाने वाली हदों तक हुआ है।

नामवर सिंह ने जब हिन्दी समीक्षा में पदार्पण किया तो वह समय न केवल हिन्दी रचना व आलोचना के लिए महत्त्वपूर्ण था, बल्कि दर्शन व साहित्य के क्षेत्र में पूरी दुनिया में गर्मागर्म बहस छिड़ी हुई थी। नामवर सिंह को उस परम्परा में भी संघर्ष करना पड़ा, जिसको वे आगे बढ़ाना चाहते थे और इसके विरोधियों से तो टक्कर लेने के लिए वे मैदान में उतरे ही थे। प्रगतिवादी समीक्षक उस समय अपना ऐतिहासिक दायित्व न पहचानकर इतिहास में . अपना स्थान सुनिश्चित करने में जुटे हुए थे। उनके बीच कथित सिद्धातों की लड़ाई व्यक्तिगत छींटाकशी का मोड़ ले चुकी थी। हिन्दी की प्रगतिवादी आलोचना में रामविलास शर्मा और शिवदान सिंह चौहान के बीच छीछालेदर काण्ड सम्पन्न हो चुका था। दूसरी ओर जैनेन्द्र और अज्ञेय के नेतृत्व में व्यक्ति-स्वातन्त्रय, रचना की विषयवस्तु पर कलात्मकता की प्रमुखता, विचारधारा से दूर विशुद्ध साहित्य की वकालत, साहित्य को सामाजिक भूमिका से काटकर मात्र रसास्वादन तक सीमित करने का अभियान जारी था। इस अभियान में बड़ी चतुराई से साहित्य को राजनीति व विचारधारा से दूर रखने के लिए अनुभव व यथार्थ को विचारधारा के बरवस रखने की कोशिश की गई तथा अनुभव की प्रामाणिकता को ही रचना की विश्वसनीयता का व प्रभावशीलता का मूल मंत्र माना गया। असल में इसके तार शीत युद्ध के दौरान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से जुड़े थे। दूसरे विश्व युद्ध के बाद विश्व में वामपंथ की ओर बढ़ते रूझान को कम करने के लिए पूंजीवाद के समर्थकों ने बर्लिन में कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम की स्थापना की, जिसमें कई देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया।सोवियत यूनियन और समाजवाद के खिलाफ निरन्तर प्रकार करने के लिए यह कांग्रेस विभिन्न स्थानों से छः पत्रिकाएं प्रकाशित करती थी। इनमें एनकाऊन्टर सबसे प्रमुख थी। फ्रांस से Freuve, वियना से Forum, फ्रांस से ही स्पेनी भाषा में Euderno, लन्दन से Soveit survey तथा The China Quarterly प्रकाशित की जाती थी। इनके अलावा राष्ट्रीय स्तरों पर दस से अधिक पत्रिकाएं छपती थी भारत में भी कई साहित्यकार इससे जुड़े हुए थे। मार्च 1951 में इस कांग्रेस का पहला एशियाई सम्मेलन बम्बई में हुआ। हिन्दी के प्रख्यात लेखक अज्ञेय को भारतीय कांग्रेस फार कल्चरत फ्रीडमका सचिव नियुक्त किया गया। बम्बई से क्वेस्ट' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी, जिसके सम्पादक अबु सईद अयूब तथा अम्लान दत्त थे।

विचार-विमर्श

विचार स्वतन्त्रता की यह कथित बहस असल में बुद्धिजीवियों में मार्क्सवाद के बढ़ते प्रभाव को मन्द करने की योजना थी। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में रचनाकारों ने बढ़-चढ़कर सक्रिय भूमिका निभाई थी और इसी कारण साहित्य का राजनीति से भी गहरा ताल्लुक था। अपने राजनीतिक विचारों, कार्यों व रचनाओं में इनकी अभिव्यक्ति के लिए सजा भुगतने वाले लेखकों की सूची काफी लम्बी है। साहित्य को राजनीति से दूर रखने का मतलब था समाज की मुख्यधारा व समस्या से अलग-थलग पड़ जाना, जिसके अभाव में कोई भी साहित्य-रचना कालजयी तो क्या जीवन्त भी नहीं हो सकती, हिन्दी के अधिकांश साहित्यकारों ने इस विचार को स्वीकार नहीं

किया। शायद इसीलिए हिन्दी जगत में उन साहित्यकारों का नाम आदर से नहीं लिया जाता, जिन्होंने कि अपनी रचनाओं में जन-भावना के इस रूप को वाणी नहीं दी. बल्कि वहीं रचनाएं ही लोगों में लोकप्रिय हुई, जिनमें राजनीतिक/ स्वर प्रखर रूप में था। इस पुख्ता परम्परा के बावजूद विचारधारा व राजनीति को साहित्य से दूर रखने का विचार इसी दौरान हिन्दी में लोकप्रिय हुआ। यद्यपि प्रगतिवादी आलोचना में भी साहित्य के रूप और विषयवस्तु के अन्त संबंधों पर साहित्य की सामाजिक भूमिका को लेकर और साहित्य व विचारधारा के अन्त सम्बन्धों पर बहस थी और लगातार इस पर विचार होता रहा है। लेकिन यहाँ बहस इस बात को लेकर थी कि साहित्य में विचारधारा किस रूप में हो, परन्तु कल्चरल फ्रीडम के पैरोकारों ने राजनीति और विचारधारा को साहित्य के लिए अछूत ही घोषित कर दिया। इसके लिए उन्होंने मार्क्स की विचारधारा सम्बन्धी अवधारणा की विकृत व्याख्या करके विचारधारा को मान बौद्धिक विचारों तक सीमित कर दिया, जबकि भावर्श की विचारधारा धारणा के अन्तर्गत मनुष्य के भाव, अनुभव व समधी चेतना शामिल 7.8)

नामवर सिंह ने उस समय की बहस में सक्रिय हिस्सेदारी करते हुए कल्चरल प्रीडमवादियों के विचारों में छ्पी राजनीति को पहचाना और इसके जन-विरोधी व रचना-विरोधी को उद्धादित किया। इस बहस के दौरान ही नामवर सिंह को आतीक के रूप में पहचान बनी और इसी दौरान ही नामवर सिंह की आताबना-पद्धति का विकास हुआ। उनके इस के इतिहास और आलोचना पुस्तक में संकलित है। तीसरे संस्करण की भूमिका में नामवर सिंह ने लिखा कि "यह पुस्तक छठे दशक के वैचारिक संघर्ष का एक दस्तावेज है। इस वैचारिक संघर्ष में प्रगति विरोधी विचारों का जबाब देने में इन निबन्धों ने भी एक भूमिका अदा की थी साहित्य की सामाजिक भूमिका को नकारने और विचारधारा से दूर करने के लिए 'अनुभूति को तर्क के तौर पर इस तरह पेश किया जाता था मानो कि अनुभूति अपने आप में कोई स्वतन्त्र, शाश्वत, निरपेक्ष अपरिवर्तनीय और निर्विवाद वस्तु है। नामवर सिंह ने 'अनुभूति और वास्तविकता लेख में इसका जबाब दिया। उन्होंने लिखा कि "अनुभूति एक रचनात्मक क्रिया है। अपने जीवन और परिस्थितियों को बदलने के क्रम में हमारी अनुभूतियां भी बदलती चलती है उनमें नवीनता आती है। वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के कारण मनुष्य के राग-बोध के अनेक नये पहलू प्रकट हुए। अपने देश की स्वाधीनता के लिए लड़ते हए जिस राष्ट्रीय भावना की अनुभूति प्रेमचन्द प्रसाद निराला आदि आधुनिक साहित्यकारों को हुई वह हिन्दी साहित्य में सर्वधा नयी थी—जो लेखक अपने युग की ज्वलंत समस्याओं से तटस्थ रहकर केवल अनुभूति की रट लगाया करते हैं वे अनुभूति के सामाजिक आधार का निषेध करते हैं। इसलिए उनकी सारी सदिच्छा सपना बनकर ही रह जाती है। अनुभूति वास्तविकता नहीं बल्कि वास्तविकता संबंधी भावना है। इसीलिए वह वास्तविकता का एक अंश अथवा पहलू है। अनुभूति वास्तविकता की जगह नहीं ले सकती, उसकी सार्थकता इसी बात में है कि वह वास्तविकता को रचनात्मक रूप दे सके। विषयवस्तु की अपेक्षा अनुभूति पर जोर देने वाले वस्तुत अपनी वैयक्तिक सीमाओं की वकालत करते हैं, वे अनुभूति के नहीं, "अनुभूति-विशेष के हिमायती है। इस दौरान बहस की एक विशेषता यह थी कि यह कारे सिद्धा पर केन्द्रित नहीं थी, बल्कि रचना का संदर्भ हमेशा साथ था। नामवर सिंह ने रचना के माध्यम से ही अपना पक्ष रखा, इसलिए उनकी आलोचना में कभी कोरा पांडित्य हावी नहीं हुआ। कोरे- सिद्धातों से उनकी आलोचना कोसों दूर है। रचना ही नामवर सिंह की आलोचना का आधार है, किसी बाहरी सिद्धांत की उन्होंने कभी रचना पर फिट करके मनोनुकूल निष्कर्ष नहीं निका।

परिणाम

नामवर सिंह आलोचना में अपने विचारों या सिद्धांतों की बार-बार दुहाई देना जरूरी नहीं समझते इस बारे में उनका कहना है कि "आलोचना की वह पद्धति जिसमें बार-बार सिद्धांतों की दुहाई हो, रचना के मूल्याकन, विश्लेषण से असम्बद्ध और अलग उनका उल्लेख हो, मुझे गलत लगती है। कुछ मार्क्सवादी आलोचक किसी कृति का मूल्याकन करते समय मार्क्स, एल्स लेनिन या माओ के प्रमाण पर सिद्धांत कथन करते हैं फिर उस कृति की जांच करते हैं। यह प्रणाली गुरानी शास्त्रीय आलोचना से भित्र नहीं है। कोई भी बाबा वाक्य प्रमाण विश्लेषण की अक्षमता का पुरक नहीं हो सकता। मार्क्स या लेनिन का प्रमाण विसी आता प्रामाणिक होने की गारंटी नहीं है। उसी तरह से किसी कविता में समाजवादी था की उस कविता के अच्छे होने की शर्त नहीं है।नामवर सिंह के साहित्य-संबधी सिद्धांत उनकी व्यावहारिक आलोचना के साथ ही विकसित हुए हैं। डा. मैनेजर पाण्डेय ने नामवर की आलोचना दृष्टि पर विचार करते हुए लिखा कि "उनकी आलोचना में सिद्धांत और व्यवहार की ऐसी एकता है कि एक को दूसरे से अलग करना संभव नहीं है। उनके निबंधों या पुस्तकों के शीर्षक प्रायः सैद्धान्तिक लगते हैं, लेकिन उनके भीतर सिद्धांत निर्माण से अधिक व्यावहारिक विवेचन का प्रयत्न दिखाई देता है। उनके निबंधों या पुस्तकों में सैद्धान्तिक चिंतन की प्रक्रिया यह है कि वे प्रारम्भ में किसी विचार को सूत्र रूप में रखते है। वह विचार अपना हो सकता है या दूसरों का भी देशी हो सकता है या विदेशी भी फिर वे उसकी व्याख्या करते हैं। व्याख्या के समर्थन में उदाहरण रखकर उसका विवेचन करते हैं। इस तरह विचार की सच्चाई की परख व्यवहार की कसोटी पर करते हैं और अन्त में निष्कर्ष के रूप में जो विचार प्रस्तुत करते हैं वे प्रायः उनके अपने सैद्धान्तिक निष्कर्ष होते हैं। वैचारिक स्थापना, विश्लेषण, उदाहरण, व्याख्या और निष्कर्ष की यह विचार प्रक्रिया मूलत आचार्य शुक्ल की है, जिसका उपयोग डा. नामवर सिंह ने किया है। कभी-कभी वे अत्यन्त साधारण, अति परिचित उदाहरण से अपनी बात शुरू करके क्रमश गहरे चिन्तन में प्रवृत्त होते हैं और विश्लेषण तथा विवेचन के समय अपनी वैचारिक यात्र में पाठक को साथ लेकर चलते हैं और अन्ततः ये जिस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, वह पाठक का अपना निष्कर्ष बन जाता है। लोकप्रिय लेखन की ये विशेषताएं इतिहास और आलोचना में मौजूद हैं लेकिन कविता के नये प्रतिमान में सपाटबयानी की जगह जटिलता आ गई है।रचना का वैचारिक आधार व रचनाशीलता के विश्लेषण की नामवर सिंह की निराली पद्धति में सपाटता व इकहरापन नहीं आता बल्कि रचना की जटिलता की विभिन्न परतों को वो खोलते हैं। उनकी आलोचना पद्धति की विशेष बात यह है कि वे रचना के रूप की व्याख्या विश्लेषण तक सीमित करके आलोचना को न तो रूपवाद का शिकार होने देते है और न ही समाजशास्त्रीय व्याख्या तक सीमित करके उसके रूप की उपेक्षा करते हैं। वे रचना के रूप से आरम्भ करके उसका सामाजिक आधार खोजते हुए रचना के भाव बोध व सामाजिक सत्य तक पहुंचते हैं और विष से शुरू करके रचना-प्रक्रिया से गुजरते हुए रचना के रूप की विशिष्टता तक जा पहुंचते हैं। उनका यह अनूठा ढंग कहानी और कविता दोनों की आलोचना में देखा जा सकता है। अपनी पद्धति के बारे में उनका कहना है कि आप मेरे आलोचनात्मक लेखों को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि मैने रचना के विश्लेषण के दौरान रूप के स्तर पर जहां उसमें मौजूद अन्तर्विरोधों और दुर्बलताओं की ओर संकेत किया है वहीं उस रचना के समूचे नैतिक स्खलन की बात भी की है। यह नैतिक स्खलन रचना की जीवन-दृष्टि और विचारधारा से भी संबंधित है। निर्गुण और ऊषा प्रियम्बदा की कहानियों के मेरे विश्लेषण की यही पद्धति है। अज्ञेय की कविता असाध्य वीणा का जो विश्लेषण मैने कविता के नये प्रतिमान में किया है वह भी इसी पद्धति पर है। रूप-विश्लेषण से अन्तर्वस्तु के विश्लेषण की और अन्त में समग्रत मूल्य निर्णय।' उनका यह ढंग ही उन्हें अन्य प्रगतिवादी समीक्षकों से अलग व

अधिक विश्वसनीय बनाता है। नामवर सिंह ने अपनी आलोचना को रचना पर ही केन्द्रित रखा और किसी रचनाकार के बारे में अच्छे या बुरे जैसी कोई श्रेणी का निर्माण आरोप से बचे रहे जो आलोचकों पर और प्रतिबद्ध आलोचकों पर विशेष रूप से चिपका दिया जाता है अपनों की स्तुति व अन्यों की उपेक्षा अथवा बुराई नामवर सिंह के आलोचक के पास दोस्त रचनाकारों की और दुमन रचनाकारों की कोई सूची नहीं है। मुक्तिबोध की रचनाओं का जिस तन्मयता व वैचारिक तैयारी से विश्लेषण करते हैं उसी तरह निर्मल वर्मा भी उनके पसंदीदा रचनाकार हैं।रचना के सामाजिक आधार की पहचान और उसकी सामाजिक सार्थकता के संदर्भ में उसकी महत्ता का उद्घाटन नामवर सिंह की आलोचना का केन्द्रीयसूत्र है। उनकी व्यवहारिक आलोचना में साहित्य सिद्धांतों के निरूपण की आधारभूमि यही है। साहित्य का कोई रूप हो, कोई विचार हो या साहित्य में प्रचलित कोई भ्रम या रूढि हो, वास्तविकता हो या कलात्मक सौन्दर्य हो या कोई साहित्यिक प्रवृत्ति इनके सामाजिक आधार की में ही नामवर सिंह ने हिन्दी आलोचना और विशेषकर प्रगतिशील आलोचना के समक्ष चुनौती बनी कई समस्याओं को सुलझाया।

'छायावाद की गुत्थी प्रगतिशील आलोचना के सामने चुनौती बनी हुई थी। नामवर सिंह की विश्लेषक बुद्धि व रचना के भीतर से उसकी पहचान करने की पद्धति ने इसे सुलझा दिया। ऐतिहासिक परिप्रेक्षा में रचना के दार्शनिक आधार को खोजने के प्रयास से ही छायावाद पर पड़े रहस्यवाद के कोहरे के पार की सच्चाई दिख सकी। विशुद्ध साहित्य से बाहर सामाजिक संदर्भ में देखने की कोशिश की तो नामवर को छायावाद की भाव- प्रवणता, कल्पनाशीलता प्रकृति चित्रण को व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति नजर आया। छायावाद के बारे में प्रायः कहा जाता है कि इसका संबंध तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से कतई न था। आलोचकों का बड़ा पुराना आरोप है कि जिस समय देश में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष हो रहा था. छायावादी कवि कल्पना- लोक में बैठकर इतन्ली के तार बजाया करते थे। लेकिन ऐसा वहीं लोग कहते हैं जो साहित्य को समाज का अविकल अनुवाद समझते है। अच्छी तरह से देखने पर पता चलेगा कि छायावाद ने अपने युग को अन्त भावात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है।

वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामंती मर्यादाओं के विरूद्ध था और दूसरा अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध छायावाद का व्यक्ति स्वातन्त्र्य सामंती मर्यादाओं के विरूद्ध बहुत बड़ा कदम था। राजनीतिक और आर्थिक रूप में यही व्यक्ति स्वातन्य शोषित कृषकों का पक्ष लेकर विप बादल का आह्वान करता था। • छायावादी कवि ने नारी को अपमान के एक और वासना के पर्यक से उठाकर देवी और सहचरी के आसन पर प्रतिष्ठित किया। नैतिकता की पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर उसने मानव-विवेक पर आधारित प्रेम- सम्बन्धी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म-संस्कार का बीजारोपण किया, मध्यवर्ग को व्यावसायिक प्रयोजनशीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश में विचरण की प्रेरणा दी। जहां तक साम्राज्य-विरोधी मोर्चे का सवाल है. इस पर छायावादी कवि ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों का विरोध तो नहीं किया लेकिन परोक्ष रूप से साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश-प्रेम जागरण तथा आत्मगौरव का गान गाया। कुछ की अनावश्यक नोके मार दे और कुछ में नये को निकास दे।" नामवर सिंह ने हर साहित्य-रूप की विशिता को रेखांकित करते हुए महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आर्कषित किया कि हर युग सत्य अपने कलात्मक रूपों को अपने साथ लेकर आता है और रूप में अभिव्यक्त सत्य विशिष्ट होता है। महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि कोई रूप जीवन या समाज के किसी खंड विशेष पर केन्द्रित है या पूरे जीवन को अपने में समेटने का दावा करता है. बल्कि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कोई रचना या कोई साहित्य- रूप समाज के मुख्य अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करने का निर्वाह कैसे करता है।

निष्कर्ष

"जैसे रचना के क्षेत्र में हर सार्थक रचनाकार कहीं-न-कहीं अपने लिए एक परम्परा ढूंढता है, चिंतन के क्षेत्र में भी अपने लिए एक परम्परा ढूंढने की जरूरत आलोचक को महसूस होती है। हिन्दी में यह उल्लेखनीय बात है कि इस परम्परा को खोजने ढूंढने और उससे अपने आपको जोड़ने का काम गैर-मार्क्सवादी आलोचकों की अपेक्षा मार्क्सवादी आलोचकों ने ज्यादा किया है। विचारणीय बात यह है कि भारतीय परम्पराओं की समग्रता में पहचान क्योंकर नहीं हो पाई। परम्परा के नाम पर मात्र वर्चस्वशाली परम्परा का राग ही अतापा जाता रहा और उसके शोर व बोझ के तले दबी दूसरी परम्परा के महत्व को किसी ने उतनी गम्भीरता से नहीं पहचाना। इस परम्परा का यदि कहीं कोई जिक आया भी तो फुटकल खाते के रूप में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के बहाने से नामवर सिंह ने इसे एक मुकम्मल विचार के तोर पर पहचाना और स्थापित करने की कोशिश की। भारत के वर्ग-विभक्त समाज में संस्कृति भी स्वाभाविक तौर पर विभक्त रही है, बेशक उसकी अलग-अलग पहचान करना थोड़ा कठिन जरूर होता है। जैसे काशी के भीतर दो काशी थीं एक तो काशी के पंडित तुलसीदास थे और दूसरे उसी काशी का जुलाहा था। जैसे काशी बढ़ी हुई थी वही स्थिति लगभग पूरे हिन्दुस्तान की थी। वर्चस्व की विचारधारा व संस्कृति जहाँ शास्त्रों के जोर पर तथा शासन सत्ताओं के जोर पर स्थापित रही है वहीं समाज के दबे-कुचले व शोषित-शासित लोगों की लोकचेतना व संघर्ष के जोर पर इन संस्कृतियों में टकराहट भी रही है और संघर्ष भी जो कभी खुले विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ है तो कभी समाज के विभिन्न प्रश्नों की व्याख्याओं के रूप में। परम्पराओं और मूल्यों को अपने पक्ष में भुनाने के लिए आचार्यो ने उनकी मम व्यस्थाएं भी की और उनके साफ-स्पष्ट मतव्यों को उलझाने की भी कोशिरों लगातार होती रही है। इसीलिए शायद एक समय के बाद दूसरी परम्परा पहली परम्परा का ही हिस्सा दिखाई देती है। दूसरी परम्परा के विचारक अन्तत उसी धारा में खड़े दिखाई देते है जिसके विरूद्ध वे खड़े हुए थे। परमारा में व्याप्त संघर्षजाता है और ऐसे लगता है मानों कि सर्वसम्मति कायम हो। फिर महात्मा बुल भी एक अवतार घोषित हो जाते है, कबीर, जायसी और नानक भी निर्गुण-ईश्वर की आराधना का संदेश उसी तरह देते नजर आते है जैसे कि तुलसीदास सगुण ईश्वर का नीरा भी कृष्ण की आराधना उसी तरह नजर आने जैसे कि सूरदास मर्यादाओं के नाम पर सामती- मूल्यता की री-जीवन पर बन्दी के खिलाफ उसका भाका के नीचे दब कर रह जाता है।

परम्पराओं की विभिन्नता को माना भी तो भक्ति के संदर्भ में ही दूसरी परम्परा को सही न पहचान पाने का कारण शायद हिन्दी- प्रदेश के नवजागरण का आधार भी रहा। यहां नवजागरण अपनी तमाम ऊर्जा के बाद भी शास्त्रों की अनुमति लेकर ही चला। करणीय या त्याज्य परम्पराओं के लिए मानवीय तर्क को इतना महत्व नहीं दिया जितना कि शास्त्रों के अनुमोदन का हिन्दी- प्रदेश में समाज-सुधार आन्दोलन का तर्क भी शास्त्र ही था। यही उचित-अनुचित के निर्णय का लिटमस टेस्ट था। शायद नवजागरण की इस कमजोरी को पहचानने की बजाए इसी संस्कार द्वारा परम्परा की पहचान की वजह से ही रामविलास शर्मा जैसे घोर मार्क्सवादी भी अन्ततः वेदों और शास्त्रों के आगे नतमस्तक हो जाते हैं और लोकधर्मी परम्परा की अनदेखी हो जाती है। हिन्दी समाज में दूसरी परम्परा पर विचार का प्रेरणा स्रोत हे नामवर सिंह की पुस्तक दूसरी परम्परा की खोज। नामवर सिंह की पुस्तक में दूसरी परम्परा पहली से केवल भिन्न ही नहीं, बल्कि पहली के विरूद्ध विद्रोह करने वाली वैकल्पिक परम्परा के रूप में व्याख्यायित है। परम्परा की धारणा केवल साहित्य तक सीमित नहीं होती, उसका सम्बन्ध समाज और संस्कृति से भी होता है। भारतीय समाज और साहित्य के संदर्भ में पहली परम्परा मर्यादावादी शास्त्रोन्मुखी, यथास्थितिवादी और केन्द्रवादी है तो दूसरी परम्परा स्वाधीनता को महत्व देने वाली, लोको परिवर्तनवादी और हाशिये के लोगों की चिन्ताओं से

जुड़ी है। नामवर सिंह की पुस्तक में पहली परम्परा के प्रतिनिधि है -तुलसीदास और उनके व्याख्याकार आलोचक रामचन्द्र शुक्ल तो दूसरी परम्परा के प्रतिनिधि है कबीर और उनके व्याख्याकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य में पहली परम्परा वैदिक पौराणिक धारा से जुड़ी है तो दूसरी बोद्ध धर्म और दर्शन से हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भक्तिकाल के प्रसंग में जिस तत्कधर्म की चर्चा की है, उसके मूल में बोद्ध धर्म की उपस्थिति को देखा है और बोद्ध कवि तथा दार्शनिक अश्वघोष की जातिवाद विरोधी रचना 'वज्रसूची का उल्लेख भी किया है। वज्रसूची की चिन्तन परमारा सरहपाद से होती हुई कबीर की कविता में मौजूद दिखाई देती है। बोद्ध परम्परा का विवेकवाद घोष से सरहपाद और कबीर को जोड़ता है।"नामवर सिंह ने परम्परा के संदर्भ में कथित मुख्यधारा की 'स्थापित परम्परा के समानान्तर सब कुछ को अस्वीकार करने का आधार साहस लेकर पैदा होने कबीर की परमारा की अधिक सार्थकता का जो गम्भीर प्रश्न उठाया था उसका हश्र भी पण्डितों की सभा में वही हुआ जो दूसरी परम्परा के साथ होता आया है। प्रश्न पर तो उतना विचार नहीं हुआ जितना कि उसके उठाने वाले की मंशा के बारे में। प्रश्न की तह में न जाकर उसकी सतह पर ही पत्थर फेंके जाते रहे। व्यक्तियों को आमने-सामने करके उनके उखाड मछाड़ की कवायद में यहीं हुआ कि मुद्दा तो गुम हो गया। कुछ गर्द उठी जो दूसरी परम्परा पर जम गई। हिन्दी में दूसरी परभारा पर बहस की विडम्बना यह रही है कि वह बहस व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भ को सामने रखने के बदले तुलसी बनाम कबीर रामचन्द्र शुक्त बनान हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा बनाम नामवर सिंह एक सीमित हो गई है।"कभी इस बात का आभास या अहसास नहीं होता कि किसी विशेष शब्द को किसी पर कटाक्ष करने के लिए विशेष रूप से चुना गया है। इसी से उनकी भाषा में एक रवानी आती है और पाठक के साथ संवाद का रिश्ता कायम करने में यह व्यय मदद करता है। नामवर सिंह की भाषा का रूप वहां अधिक निसर कर आया जहां उनके सामने कोई विरोधी विचार हो और उन्हें उसके भीतर की विडम्बना या कमजोरी या बेईमानी को उद्घाटित करना हो। ऐसे मौके पर भाषा के व्यंग्य की मारक क्षमता और भी बढ़ जाती है। व्यापकता और गहराई के प्रत्र की आड़ में व्यक्तिवादी रचनाकार जब प्रेमचन्द पर हमले कर रहे थे तो नामवर सिंह के उत्तर की भाषा देखने लायक है। आज के बहुत से लेखक है जो वास्तविकता पर परदा डालने को ही गहराई समझते है। ये आज के शो और सामाजिक प्रगति पर रहस्य और दर्द के कहासे का परदा डालते है। जो सत्य का उद्घाटन करने की ओर कदम नहीं बढ़ाता उसकी गहराई कैसी?

सचाई यह है कि गहराई के हिमानी है और अपने अन्दर निस्तर सिमटते जाने को ही वे गहराई कहते है। परिस्थिति पर प्रहार करना तो दूर उल्टे भागते है या सहरतेचा कूर्मानीय सर्वशी को जीने धर्म है। इस तरह लेखक जैसे-जैसे अपने भीतर सिमटते है उसी क्रम से समाज से दूर होते जाते है। राजाजी की गोधियों की तरह उन्हें भी कहना चाहिए कि ज्या-ज्या बरो जात दूर-दूर प्रिय ग्राम यो जात - हमारे में।फिर भी ये बहादुर को दी नहीं गोपा समाज से एसमान में भागता ही एक पाप है। इस आकारिकता को लेखक तारिक सामाजिकहते है।

नामवर को हिन्दी आलोचना में जो ख्याति प्राप्त हुई है उसका श्रेय उनकी आलोचना की रचनात्मक भाषा को भी जाता है। आलोचना की भाषा अक्सर या तो पांडित्य से बोझिल व नीरस हो जाती है या फिर आलोचक का एक तरफा वक्तव्य बनकर रह जाती है। नामवर सिंह की सृजनात्मक भाषा पाठकों के साथ संवाद करती है। नामवर की भाषा पाठक पर हथोड़े नहीं बताती बल्कि धीरे से उसकी चेतना में उतर जाती है। कथा साहित्य में जो भाषा प्रेमचन्द ने अपनाई और सीधे लोगों से संवाद करती हुई उनके दिलो-दिमाग में जगह बना ली वही काम नामवर सिंह की भाषा आलोचना में करती है। यह अपने पाठक के साथ जीवन्त संबंध बनाए रखती है और उसे अपने साथ

लेकर चलने की क्षमता रखती है। व्यंग्य नामवर की भाषा का सहज गुण है। व्यंग्य के लिए उनको विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता यह शब्दों के बीच अपनी उपस्थिति बनाए रखता है।कभी इस बात का आभास या अहसास नहीं होता कि किसी विशेष शब्द को किसी पर कटाक्ष करने के लिए विशेष रूप से चुना गया है। इसी से उनकी भाषा में एक रवानी आती है और पाठक के साथ संवाद का रिश्ता कायम करने में यह व्यय मदद करता है। नामवर सिंह की भाषा का रूप वहां अधिक निसर कर आया जहां उनके सामने कोई विरोधी विचार हो और उन्हें उसके भीतर की विडम्बना या कमजोरी या बेईमानी को उद्घाटित करना हो। ऐसे मौके पर भाषा के व्यंग्य की मारक क्षमता और भी बढ़ जाती है। व्यापकता और गहराई के प्रत्र की आड़ में व्यक्तिवादी रचनाकार जब प्रेमचन्द पर हमले कर रहे थे तो नामवर सिंह के उत्तर की भाषा देखने लायक है। आज के बहुत से लेखक है जो वास्तविकता पर परदा डालने को ही गहराई समझते है। ये आज के शो और सामाजिक प्रगति पर रहस्य और दर्द के कहासे का परदा डालते है। जो सत्य का उद्घाटन करने की ओर कदम नहीं बढ़ाता उसकी गहराई कैसी?सचाई यह है कि गहराई के हिमानी है और अपने अन्दर निस्तर सिमटते जाने को ही वे गहराई कहते है। परिस्थिति पर प्रहार करना तो दूर उल्टे भागते है या सहरतेचा कूर्मानीय सर्वशी को जीने धर्म है। इस तरह लेखक जैसे-जैसे अपने भीतर सिमटते है उसी क्रम से समाज से दूर होते जाते है। राजाजी की गोधियों की तरह उन्हें भी कहना चाहिए कि ज्या-ज्या बरो जात दूर-दूर प्रिय ग्राम यो जात - हमारे में।फिर भी ये बहादुर को दी नहीं गोपा समाज से एसमान में भागता ही एक पाप है।

संदर्भ

उतरार्द्ध; (अंक-22, जबरीमल पारख का लेख); पृ. 50

सं. समीक्षा ठाकुर; कहना न होगा; वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ. -65

पल प्रतिपल; अप्रैल-जून, 2002; पृ.- 213

नामवर सिंह; आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977, पृ. 43

नामवर सिंह; कहानीः नयी कहानी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद: 1989; पृ. 18

नामवर सिंह; कहानीः नयी कहानी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; 1989; पृ. 21

नामवर सिंह; कहानीः नयी कहानी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989: पृ.23

नामवर सिंह: कहानीः नयी कहानी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989: पृ. 19

नामवर सिंह: कहानीः नयी कहानी: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989; पृ. 25

नामवर सिंह कहानी: नयी कहानी: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद: 1989: पू.-20

नामवर सिंह; इतिहास और आलोचना; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 1986; पृ. -7

नामवर सिंह; इतिहास और आलोचना; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 1986; पृ.-53

कहना न होगा; पृ. - 63

मैनेजर पाण्डेय; आलोचना की सामाजिकता; वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005; पृ. 59

सं. समीक्षा ठाकुर; कहना न होगा; वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ.-62

Citation: **Kumari. S.,** (2024) "नवर सिंग के कार्यों में हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण" *Bharati International Journal of Multidisciplinary Research & Development (BIJMRD)*, Vol-2, Issue-5, June-2024.